Introduction

:: प्राक्कथन ::

इस विपुल विराट अनंत सृष्टि का एक लघु अंश पृथ्विक सृष्टि है और पृथ्वी की जैविक सृष्टि में मनुष्य ने सबसे अधिक प्रगति की है। मनुष्य की इस प्रगति के मूल में [illegible] उसकी भाषा है। भाषा तो मनुष्येतर प्राणियों के पास भी हैं, परंतु वह अत्यंत अविकसित एवं कुछ गिने-चुने व्यापारों की अभिव्यक्ति तक सीमित है। जटिल भावों एवं व्यापारों के लिए वह सक्षम नहीं है। जबकि मनुष्य ने शनैः शनैः उस भाषा का इतना विकास कर दिया है कि वह साहित्य, शास्त्र, इतिहास, पुराण, दर्शन, विज्ञान आदि [illegible] गूढातिगूढ विषयों का विमर्श उसके माध्यम से कर सकता है। अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के दिनों में मेरी अभिरूचि भाषा के विषयों की ओर रही है, फलतः जब कालेज-शिक्षा की बात आई तो वहां भी मैंने भाषागत विषयों को ही चुना। बी.ए. हिन्दी-गुजराती के साथ और एम.ए. समग्र हिन्दी के साथ किया। " काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धिमताम् " जो कहा गया है, उसके औचित्य का अनुभव मुझे होने लगा।

यहां एक बात स्पष्ट कर दूं कि मेरे घर का परिवेश कभी भी साहित्यानुशीलन या साहित्यानुराग का नहीं रहा। एक मध्यवित्त - परिवार जहां आजीविका को ही केन्द्र में रखा जाता है, वहां काव्य इत्यादि का प्रेम शायद ही देखने को मिलता है। मेरा परिवार भी उसमें अपवाद नहीं है। परंतु शुरू से ही मुझे कहानी-किस्से पढ़ने का शौक था और गुजराती दैनिकों में रविवारीय पूर्तियों में जो कहानियां प्रकाशित होती थीं, उन्हें मैं चाव से पढ़ जाती थी। मेरी दो सहेलियां मुझसे दो साल आगे थीं। उनकी हिन्दी-गुजराती की पाठ्य- पुस्तकों में

भी जो कहानी-किस्से होते थे उनको मैं पढ़ जाती थी । इस प्रकार कहानियों को पढ़ने का एक चस्का-सा लग गया । इस उपक्रम में मैंने गुजराती के कथाकारों में धूमकेतु , मेघाणी , र.व. देसाई , चुनिलाल मडिया , रा. वि. पाठक इत्यादि तथा हिन्दी के लेखकों में ~~प्रेमचन्द~~ प्रेमचन्द , उपेन्द्रनाथ अश्क , जयशंकर प्रसाद , सुदर्शन , सियारामशरण गुप्त , जैनेन्द्र , अज्ञेय आदि की कुछ कहानियों को पढ़ा । कहानियों के साथ ही साथ उपन्यास पढ़ने का शौक भी चर्राया । शुरूआत चुनीलाल वर्धमान शाह के रोमानी उपन्यास "जीगर अने अमी" से हुई तो फिर कन्हैयालाल माणेकलाल मुंशी तथा र.व. देसाई के कतिपय उपन्यासों को पढ़ डाला । मुंशी की अपेक्षा मुझे र.व. देसाई के सामाजिक उपन्यासों में अधिक आनंद आता था । "कोकिला" , "जयंत" , भारेलो अग्नि" , ग्राम्यलक्ष्मी " आदि उपन्यास मैंने बी.ए. तक में पढ़ डाले थे । हिन्दी में जो पहला उपन्यास मैंने पढ़ा वह था मुंशी प्रेमचन्द का "सेवासदन" । प्रेमचन्दजी की कहानियों से तो मेरा संबंध आठवीं कक्षा से था । हिन्दी में वे मेरे प्रिय लेखक थे ।

इस प्रकार नियति के किसी अगम्य निर्देशानुसार मैं कथा-साहित्य की पाठिका बन रही थी , तभी मेरे इन साहित्यिक संस्कारों को अभिसिंचित करने वाले कुछ गुरुओं का सहयोग एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ , जिनमें गुजराती के डा. नीतिन मेहता , प्रो. सीतांशु यशश्चन्द्र , त्रिवेदी साहब , दवे साहब आदि हैं ; तो हिन्दी में देसाई साहब , तलाटी साहब , शर्मा साहब , डा. प्रेमलता बाफना तथा गोस्वामी साहब आदि हैं । एम.ए. में विशेष पत्र के रूप में मैंने "उपन्यास" को लिया था जो डा. पारुकांत देसाई तथा डा. के.एम. शाह साहब लेते थे । तभी मैंने सोच लिया था कि यदि अवसर मिला तो मैं प्रेमचन्द को लेकर ही शोध-कार्य करूंगी । मेरे अनेक मित्रों तथा सहेलियों ने बताया कि प्रेमचन्द पर तो काफ़ी काम हो गया है और अब उसमें कोई गुंजाइश नहीं है । एम.ए. करने के उपरांत मैं देसाई साहब से मिली और मैंने अपनी इच्छा उनके आगे रखी । उन्होंने प्रेमचन्द की कुछ कहानियों के बारे में

पूछा । मैंने यथाशक्ति उत्तर दिये । मेरे उत्तरों से शायद वे संतुष्ट हुए । कुछ दिनों के बाद पुनः आने के लिए कहा । दस-पन्द्रह दिनों के उपरांत जब मैं उन्हें पुनः मिली तो उन्होंने मुझे यह विषय बताया :-- "प्रेमचन्द के जीवन-संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में उनके कथा-साहित्य का अनुशीलन " । मेरी बाछें खिल गईं । आनंद से मैं बाग-बाग हो गई । उन्होंने मुझे शोध-प्रक्रिया एवं शोध-विधि के संबंध में बताया तथा हिन्दी के कुछ प्रकाशित-अप्रकाशित शोध-प्रबंधों को देख जाने के लिए कहा । इन सबमें कुछ महीने व्यतीत हो गये । उसके बाद उक्त विषय को लेकर मेरा नाम पी-एच.डी. के लिए पंजीकृत हो गया ।

किसी भी लेखक के साहित्य का अनुशीलन उसके जीवन के परिप्रेक्ष्य में करना अपने आप में एक दिलचस्प घटना है इसका अनुभव इस कार्य के दौरान मुझे हुआ है । जिन परिस्थितियों से लेखक दो-चार होता है , उसका उसके साहित्य पर प्रभाव अवश्य पड़ता है । लेखक चाहे जितना तटस्थ रहे , पर उसके जीवन-संघर्ष की परछाइयाँ उसके रचना-देह पर पड़े बिना नहीं रह सकतीं । पंत और निराला क्रमशः श्वेत व काले रंग को पसंद करते थे , तो उसके पीछे कुछ तो कारण रहे होंगे । प्रसादजी प्रायः "सुख-दुःख" के स्थान पर "दुःख-सुख" लिखते हैं , तो क्यों ? आखिर क्यों हमें सूर-तुलसी में सौम्यता और कबीर में प्रखरता मिलती है ? क्यों कबीर-निराला-नागार्जुन-सर्वेश्वर में हमें व्यंग्य की चुभन मिलती है ? क्यों कुछ लोग सौन्दर्य-बोध की बात करते हैं , तो कुछ सामाजिक बोध की ? इन प्रश्नों के उत्तरों के लिए हमें उन-उन लेखकों के जीवन की पड़ताल करनी पड़ती है । योरोप व अमेरिका में इस प्रकार के अनुशीलन हुए हैं । हमारे यहाँ "व्यक्तित्व और कृतित्व" को लेकर कुछ काम तो होते रहे हैं , परंतु वहाँ प्रायः व्यक्तित्व को लेकर एक अध्याय देने के उपरांत उनके कृतित्व की चर्चा हुई है और इन दोनों के मिलान की प्रवृत्ति उपेक्ष्य रह गई है । इन दो "अड़धियों " को मिलाने का , मिलाकर देखने का कार्य नहींवत् हुआ है ।

अतः प्रस्तुत अध्ययन में मैंने प्रेमचन्द के जीवन को , विशेषतः उनके जीवन-संघर्ष को रेखांकित करते हुए उसके परिप्रेक्ष्य में उनकी कहानियां और उपन्यासों को देखने का प्रयत्न किया है । हिन्दी में एक कहावत है — " जाके पैर न फटे बिवाई , सो क्या जाने पीर पराई " । गुजराती के एक कवि ने भी लिखा है —

"दुखीना दुखनी वातो सुखी ना समझी शके
सुखी जो समजे पूरे दुःख ना विश्वमां टके "

और कवि और लेखक को तो प्रायः "पराई पीर" से ही वास्ता होता है । अपना दुःख तो सभी रोते हैं , अपनी लड़ाई तो सभी लड़ते हैं । परंतु लेखक या कवि वे जीव हैं , जो दूसरों के दुःख से दुःखी होते हैं । इसे ही उनका "वाल्मीकि-धर्म " कहते हैं ।

कला मात्र के सृजन के लिए दर्द या पीड़ा का होना अनिवार्य है । जब तक किसीका दर्द या पीड़ा से वास्ता न होगा , उसकी कला-कृति में वह कशिश नहीं आ पायेगी । प्रेमचन्द की रचनाओं में वह कशिश है , क्योंकि उनका जीवन संघर्ष की एक अनवरत यात्रा के समान है । वैसे तो कला या रचना का रास्ता ही संघर्ष का रास्ता है , परंतु प्रेमचन्द को तो यों भी अनेक संघर्षों से गुजरना पड़ा है । शैशव से लेकर मृत्यु-पर्यन्त यह व्यक्ति जीवन-सागर में अपनी छोटी-सी नाव को लेकर जूझता रहा है । और मजा तो यह है कि इस संघर्ष को , अस्तित्व की इस लड़ाई को उसने खेल के मानिंद ही लिया है । और यही कारण है कि उसके लेखन में "स्त्रैण भावों " की अपेक्षा "पौरुषेयता" के दर्शन होते हैं ।

प्रेमचन्द के जीवन-संघर्ष के अध्ययन के लिए मैंने अमृतराय (कलम का सिपाही) , मदनगोपाल (कलम का मजदूर) , डा. रामविलास शर्मा (प्रेमचन्द और उनका युग) , शिवरानीदेवी (प्रेमचन्द घर में) , डा. हंसराज रहबर (प्रेमचन्द : जीवन , कला और कृतित्व) , डा. मन्मथनाथ गुप्त (प्रेमचन्द : व्यक्ति और साहित्यकार) , डा. मनो-

डा. मदनगोपाल (लाईफ एण्ड वर्क आफ प्रेमचन्द), डा. पारूकांत देसाई (युगप्रवर्तक प्रेमचन्द) प्रभृति लेखकों के ग्रंथों का अध्ययन किया । तदुपरांत प्रेमचन्द की रचनाओं -- कहानियों और उपन्यासों -- का प्रथम , द्वितीय एवं तृतीय वाचन किया । पहले तो प्रेमचन्द की कहानियाँ "प्रेम-प्रसून" , "प्रेम-बत्तीसी" , "प्रेम-पचीसी" आदि नामों से प्रकाशित हुई थीं ; परंतु अब उन समग्र कहानियों को "मानसरोवर भाग 1 से 8 " में संकलित कर लिया गया है । उनके उपन्यासों में "देवस्थान रहस्य " (असरारे मआबिद) , "प्रेमा" (हम खुर्मा व हमसबाब) , "किशना" , "सेवासदन" (बाज़ारे हुस्न) , "प्रेमाश्रम " (गोशए आफियत) , "वरदान" (जलवए ईसार) , "रंगभूमि" (चौगाने हस्ती) , कायाकल्प (पर्दए मजाज़) , "निर्मला" , "प्रतिज्ञा" , "गबन" , "कर्मभूमि" (मैदाने अमल) , "गोदान" , "मंगलसूत्र" (अपूर्ण) आदि आते हैं । उनका भी एक सिरे से कई-कई बार अध्ययन किया ।

प्रस्तुत अध्ययन को मैंने सात अध्यायों में विभक्त किया है -- (1) विषय-प्रवेश , (2) प्रेमचन्द का जीवन-संघर्ष (3) शैशवकालीन संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी के कथा-साहित्य का अनुशीलन (4) आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी का कथा-साहित्य (5) सामाजिक एवं राजनीतिक या वैचारिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में ..... (6) शैक्षिक एवं साहित्यिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में ... (7) उपसंहार ।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान मेरुदण्ड के समान है । हिन्दी कथा-साहित्य को गौरव एवं गरिमा की प्राप्ति उन्हीं के आविर्भाव से हुई । प्रेमचन्द-पूर्वकालीन कथा-साहित्य अविकसित , अपरिपक्व , स्थूल कथावस्तु प्रधान , मनोरंजन-प्रधान और कुछ हल्के स्तर का था । उस समय हिन्दी उपन्यास को अन्य भाषा-भाषी अधिक महत्व नहीं देते थे और हिन्दी में अनूदित उपन्यासों का बोलबाला था । देवकीनंदन खत्री के "चन्द्रकान्ता " और "चन्द्रकान्ता संतति " की

धूम तो थी , पर अन्य कारणों से । उसका औपन्यासिक मूल्य नहींवत् था । प्रेमचन्द्र के आगमन से हिन्दी कथा-साहित्य की यह दरिद्रता दूर हुई । कथा-साहित्य में चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति को वेग मिला । अद्भुत के सामने सर्व-सामान्य की स्थापना हुई । डा. रामविलास शर्मा ने बिलकुल उपयुक्त कहा है कि प्रेमचन्द का महत्व इसमें है कि उन्होंने हजारों-लाखों "तिलस्मे होशरूबा" और "चन्द्रकान्ता के पाठकों को "सेवासदन" का पाठक बनाया । इतना ही नहीं उन्होंने पाठकों की साहित्यिक रुचि का भी मार्जन किया । "सेवासदन" का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ । हिन्दी कथा-साहित्य पहली बार उस स्थिति तक पहुंचा कि अन्य भाषा के लोग उस की कुछ नोंध लें । बड़ौदा के प्रतापगंज में तो एक सज्जन प्रेमचन्द के लेखन के इतने कायल हुए कि उन्होंने अपने बंगले का नाम ही "सेवासदन" रख दिया था ।

अतः "विषय-प्रवेश" के इस प्रथम अध्याय में कतिपय ऐसे मुद्दों की चर्चा की गई है कि जिनसे विषय का प्रवर्तन आसान हो । ऐसे मुद्दों में युगनिर्माता प्रेमचन्द , युगीन-परिवेश , उपन्यास और युगीन बोध , युगीन चेतना और तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन , लेखक के वैयक्तिक जीवन का उसकी रचनात्मकता पर प्रभाव , शैशवकालीन प्रभाव , सृजन और जीवनानुभव , प्रेमचन्द के जीवन का संक्षिप्त परिचय , प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का संक्षिप्त ब्यौरा आदि की परिगणना कर सकते हैं ।

दूसरा अध्याय प्रेमचन्द के जीवन-संघर्ष को लेकर है । 31 जुलाई सन् 1880 में प्रेमचन्द का जन्म हुआ और 8 अक्तूबर सन् 1936 को उनका जीवन-दीप बुझ गया । इन 56 वर्षों में प्रारंभ के कुछ वर्षों को छोड़कर प्रेमचन्द ने निरंतर संघर्ष किया है । प्रेमचन्द का यह जीवन-संघर्ष विविध धरातलों पर है । कहीं यह संघर्ष पारिवारिक है , कहीं सामाजिक , कहीं आर्थिक , कहीं साहित्यिक , कहीं राजनीतिक , कहीं शैक्षिक तो कहीं वैचारिक । इनमें कुछ तो दैविक हैं और कुछ आमंत्रित । शैशवकालीन संघर्ष तथा सामाजिक-आर्थिक-पारिवारिक संघर्ष तो परिस्थिति-जन्य हैं और दैवाधीन हैं , हालांकि संपूर्णतया दैवाधीन तो नहीं कह सकते क्योंकि

उसमें भी कहीं-न-कहीं समाज-व्यवस्था कारणभूत है । जैसे कि प्रेमचन्द के जीवन में सौतेली मां को लेकर जो मानसिक त्रास है , उसका उत्स कहीं-न-कहीं हमारी समाज-व्यवस्था में है । किशोर और युवा विधवाओं को लेकर तत्कालीन समाज मौन व मूक है , जबकि मुंशी अजायबराय जैसे "वन" में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को दूसरे विवाह की छूट है , उन्हें रोकने-टोकने वाला कोई नहीं , बल्कि प्रोत्साहन और मदद देने वाले ही पैरोकार हैं । इस संबंध में स्वयं प्रेमचन्दजी कहते हैं — "आखिर क्या पड़ी थी मुंशी अजायबलाल को जो बेटी-बेटे के रहते हुए बुढ़ौती में जाकर दूसरा ब्याह किया ? सेहत भी आपकी माशा अल्ला थी , रोज गिलसिया भर दाख न पहाते तो चलना-फिरना दूभर हो जाता , लेकिन शादी करने से बाज न आये । ताज्जुब है कि अज़ीज़ों में किसीने समझाया भी नहीं कि भैया क्या करते हो , क्यों अपने गले की यह फांसी मोल लेते हो । भगवान के दिये तुम्हारे दो बच्चे हैं , अब तुम्हें और क्या चाहिए । राम का नाम लो और इस हरकत से बाज आओ , इसमें सिवाय ख्वारी के और कुछ तुम्हें हाथ न लगेगा । न किसीने समझाया न खुद आपको अक्ल आयी । " — कलम का सिपाही : पृ. 46 ।

गरज यह कि कुछ तो बातें ऐसी हैं कि जिन पर मनुष्य का बस नहीं चलता , पर कुछ खुराफातें तो मनुष्य और समाज की गढ़ी हुई हैं । ऐसे ही प्रेमचन्द के जीवन में जो संघर्ष है वह अधिकांशतः आमंत्रित है । पर यह आमंत्रित संघर्ष ही प्रेमचन्द की शक्ति है । यह संघर्ष प्रेमचन्द के आदर्शों के कारण है , xxxx वैचारिकता के कारण है , उनके भीतर पड़े हुए दर्द और देशप्रेम के कारण है , अपने लेखन को ज़िन्दा रखने की जद्दोजहद के कारण है , कुछ लोगों की रोजी-रोटी की चिन्ता के कारण है , अदबी-तरक्की के लिए निकाले गए "हंस" और "जागरण" के कारण है । अन्यथा प्रेमचन्द अमन-चमन की ज़िन्दगी भी बसर कर सकते थे । अलवर नरेश के चार सौ रूपये माहवार , बंगला-गाड़ी , नौकर-चाकर के निमंत्रण को ठुकराया ; अंग्रेज-सरकार की

रायबहादुरी को ठुकराया , अजंटा-सिनेटोन के इंग्लैंड टूर के आफर को ~~ठुकरा~~ ठुकराया । अभिप्राय यह कि चाहते तो बहुत कुछ हासिल कर सकते थे , पर तब प्रेमचन्द , प्रेमचन्द न रहते । यह कांटों में खिला हुआ फूल है , सेज पर मुरझा जाता । और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये सब प्रेमचन्द ने गरीबी की हालत के रहते हुए किया । समृद्धि में लोटने के बाद उसे छोड़ने के तो कई किस्से मिल जायेंगे । अतः इस अध्याय में प्रेमचन्द के सभी प्रकार के संघर्षों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है , ताकि दूसरे अध्यायों में उन-उन संघर्षों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का जायजा लिया जाये ।

किसी भी मनुष्य के जीवन में उसका बचपन बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होता है । उस समय उसके "लिबिडो" में जो संग्रहीत हो जाता है , उसका प्रभाव ताज़िन्दगी रहता है । कई बार तो उसे स्वयं नहीं मालूम होता कि किसी विशेष परिस्थिति में उसका व्यवहार अलग या विचित्र क्यों हो जाता है । भारतीय मनीषा तो गर्भस्थ शिशु तक के संस्कारों को मानती रही है । जब सामान्य मनुष्य को शैशवकालीन अनुभव इतना प्रभावित कर सकते हैं , तो लेखक या कवि को तो और भी करेंगे क्योंकि वे अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होते हैं । प्रेमचन्द के शिशु-जीवन में भी अनेक संघर्ष दृष्टिगत होते हैं । माता की मृत्यु , विमाता का त्रास , गरीबी और अभाव, भयाक्रांत स्थिति , पिता की उपेक्षा , पढ़ाई का बोझ जैसे मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में तीसरे अध्याय में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का अनुशीलन किया गया है । "चोरी" , "होली की छुट्टी" , "प्रेरणा" , "खून सफेद" , "घर जमाई" , "भूत" , "[illegible]" , "अलग्योझा" जैसी कहानियाँ तथा "कर्मभूमि" , " रंगभूमि" , "निर्मला" प्रभृति उपन्यासों से अनेक उदाहरणों को लेते हुए इसमें यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि शैशवकालीन संघर्षों ने प्रेमचन्द के कृतित्व के पिण्ड को कैसे तैयार किया है ।

चौथे अध्याय में प्रेमचन्द के आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में उनके साहित्य को देखा-परखा गया है । आर्थिक संघर्ष तो प्रेमचन्द के जीवन में परछाईं की तरह रहा है । प्रेमचन्द के तमाम-

तमाम खतों-किताबत से यही एक सुर प्रधानता के साथ उभरता है । अपनी माली हालत के कारण ही वे अपना ढंग से इलाज भी नहीं करा पाये और उसके कारण ही उन्हें कई बार बीमार-अवस्था में भी काम करना पड़ा । डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन सौ फी सदी सही है कि प्रेमचन्द की मूल समस्या ऋण की समस्या है और कृषक-समाज के ऋण की समस्या का यथार्थ आकलन जो उनकी कहानियों में उपलब्ध होता है उसका उत्स भी यही है । "रंगभूमि" का ताहिरअली और कोई नहीं प्रेमचन्द ही है । "गोदान" का तपती दुपहरी में लू खाकर दम तोड़ता "होरी" भी प्रेमचन्द ही है । प्रेमचन्द ताज़िन्दगी अपने को मज़दूर ही मानते रहे हैं ।

पारिवारिक संघर्ष के तहत प्रेमचन्दजी के ताऊ महावीर के हाथों से साठ बीघे जमीन का निकल जाना, परिवार-जनों की असामयिक मृत्यु, चाचा उदितनारायण लाल का ग़बन के मुकदमे में फंसना और सज़ा काटना, वात्सल्य की देवी -- आनंदीदेवी {उनकी माता} की उनके बचपन काल में ही असामयिक मृत्यु, पिता का दूसरा ब्याह, विमाता द्वारा मानसिक त्रास, पिता द्वारा किशोर अवस्था में ही [illegible] उम्र में ज्यादा ऐसी भयंकर बदसूरत औरत से प्रेमचन्द की शादी करा दिया, बाद में घर की समग्र जिम्मेदारी प्रेमचन्द के कंधों पर डालकर उनके पिता का स्वर्गवास, सौतेली माँ और पत्नी में रात-दिन की खटपट जैसी अनेकानेक घटनाओं को लिया जा सकता है । उक्त घटनाओं एवं संघर्षों के अक्स उनके उपन्यासों तथा कहानियों में उपलब्ध होते हैं । इस अध्याय में इनके परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्दजी के कथा-साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत हुआ है ।

पाँचवें अध्याय में सामाजिक एवं राजनीतिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में मुंशीजी के कथा-साहित्य को मूल्यांकित करने की चेष्टा हुई है । यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य होगा कि ये दोनों प्रकार के संघर्ष वैचारिक संघर्ष का ही परिणाम है । लेखक अपने समाज का मुख और मस्तिष्क है । समाज की बुराइयों, उसकी कुरीतियों, शोषण-लीलाओं, धर्म के नाम पर चलने वाले अधर्म, ढोंग-ढकोसले इत्यादि का पर्दाफाश यदि लेखक न

करेगा तो कौन करेगा ? अतः मुंशीजी ने दहेज-प्रथा , वेश्या-समस्या , विधवा-विवाह , बाल-विवाह , अनमेल-विवाह , वृद्ध- विवाह , नारी-शिक्षा , छुआछूत की समस्या , हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या , धार्मिक बाह्याडंबर प्रभृति पहलुओं को लेकर समाज के परंपरावादी रूढ़िग्रस्त लोगों से अपने कथा-साहित्य के द्वारा संघर्ष छेड़ा था ; जिसके कारण समाज के एक तबके की ओर से उन्हें काफी सहन भी करना पड़ा । उन पर तरह-तरह के आरोप लगाए जाने लगे । यहां तक कि उन्हें कोर्ट में भी घसीटा गया ।

जिस युग में प्रेमचन्दजी का आविर्भाव हुआ था , वह राजनीतिक हलचलों का युग था । अतः उनके जैसे क्रांतद्रष्टा लेखक राजनीति से अलिप्त कैसे रह सकता है । "सोजेवतन" की राष्ट्रीय धारा की कहानियों के कारण अंग्रेज सरकार का कोपभाजन होना , नवाबराय को तिलांजलि देकर प्रेमचन्द नाम से हिन्दी में लिखने की शुरूआत , जलियांवाला बाग की घटना , गांधीजी के आह्वान पर नौकरी से त्यागपत्र , शिवरानीदेवी का राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने के कारण जेल जाना जैसी अनेकानेक घटनाओं से यह प्रमाणित होता है कि विदेशी सत्ता के प्रति विद्रोह की भावना मुंशीजी में प्रारंभ से ही थी । परंतु उनकी राजनीतिक समझ विकासशील रही है । आर्यसमाज , गांधीवाद तथा मार्क्सवाद को छूती हुई वह मानवतावाद तक पहुँची है और अपनी इस विचार-यात्रा में उन्होंने हर उस मुहिम का विरोध किया है जिसके मूल में मानवता का शोषण अन्तर्निहित हो । आखिर-आखिर में गांधीवाद तथा गांधीवादी नेताओं से भी उनका मोहभंग हो गया था । इस अध्याय में मुंशीजी के उक्त सामाजिक एवं राजनीतिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में उनकी कहानियों तथा उपन्यासों का सम्यक् अनुशीलन करने का यत्न किया गया है ।

छठे अध्याय में मुंशीजी के शैक्षिक एवं साहित्यिक संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में उनके कथा-साहित्य को जांचने-परखने का उपक्रम है । यह

जानकर बहुतों को आश्चर्य होगा कि हिन्दी साहित्य का यह दिग्गज लेखक बहुत कम पढ़ा-लिखा था । मैट्रिक की परीक्षा के समय पिता की मौत के कारण सेकण्ड डिविजन आया । अतः उच्चतर पढ़ाई के लिए स्कालरशीप नहीं मिल सकती थी । पहले कालेज में गणित भी एक फरजियात विषय के रूप में रहता था और गणित में मुंशीजी कमजोर थे । अतः मैट्रिक के बहुत समय के बाद जब गणित का नियम नहीं रहा तब उन्होंने इन्टर. और बी.ए. किया । कहने का तात्पर्य यह कि अपनी शिक्षा के लिए भी उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा था । यह संघर्ष त्रिस्तरीय पाया जाता है -- प्राथमिक शिक्षा का संघर्ष, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा के लिए किया गया संघर्ष तथा शिक्षक की नौकरी के दौरान किया गया संघर्ष । "चोरी", "होली की छुट्टी", "सौभाग्य के कोड़े", "गुल्ली-डण्डा", "लोटरी", "लाल-फीता", "हार की जीत", "मोटा", "कप्तान साहब", "बड़े भाईसाहब" आदि कहानियाँ तथा "निर्मला", "कर्मभूमि", "वरदान" आदि उपन्यासों में इस संघर्ष के कई चित्र मिलते हैं ।

साहित्यिक संघर्ष भी मुंशीजी को कम नहीं करना पड़ा । ये संघर्ष तीन धरातलों पर पाया जाता है । एक तो हिन्दी तथा उर्दू में स्थापित होने के लिए जो परिश्रम करना पड़ा, कई प्रकार के पापड़ बेलने पड़े । पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के साथ उनके खतो-किताबत से यह जाहिर होता है । दूसरे हिन्दी के कुछ ईर्ष्यालु तथा संकीर्ण वृत्तिवाले लेखकों की ओर से जो "कीचड़-उछाल" कार्यक्रम चला उनसे उन्हें दो-चार होना पड़ा । "सोजेवतन" को सरकारी कोप का भाजन होना पड़ा । फलतः उर्दू में "नवाबराय" की बनी-बनाई "गुडविल" को त्याग कर "प्रेमचन्द नाम धारण करना पड़ा । कुछ मामलों को लेकर उन्हें अदालत में भी घसीटा गया । तीसरे "हंस" तथा "जागरण" जैसी पत्रिकाओं के कारण जो उन्हें संघर्ष करना पड़ा उसे भी यहाँ रेखांकित कर सकते हैं । इस अध्याय में उनके उक्त शैक्षिक एवं साहित्यिक

संस्थाओं के अक्सों को उनके कृतित्व में पहचानने का प्रयास हुआ है ।

अंतिम अध्याय "उपसंहार" का है, जिसमें प्रस्तुत अध्ययन के महत्त्वपूर्ण मुद्दों को नवनीत रूप में नितारने का एक सचेष्ट यत्न हुआ है । समूचे प्रबंध के समग्रावलोकन के उपरांत उसके निष्कर्षों को यहां प्रस्तुत किया गया है । प्रस्तुत अध्ययन का महत्त्व, उससे निःसृत प्रश्न और समस्याएं, भविष्यत् अनुसंधान की दिशाएं प्रभृति को उकेरने का एक संनिष्ठ प्रयास भी यहां किया गया है । जहां तक संभव है, अध्याय के अंत में समग्रावलोकन के पश्चात् कुछ निष्कर्षों को देने का उपक्रम भी रहा है । अध्ययन के अंत में "संदर्भिका" के विभिन्न परिशिष्टों में उपजीव्य ग्रंथ, सहायक ग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएं प्रभृति को अकारादि क्रम में रखा गया है ।

अंत में मैं उन सब महानुभावों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूं जिन्होंने मेरे इस कार्य में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मार्गदर्शन व प्रोत्साहन दिया है । हिन्दी विभाग के सभी अध्यापक, विशेषतः डा. झा, डा. बाफना, डा. बंसीधर शर्मा आदि का मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूं । प्रो. मदनगोपाल गुप्तजी तथा प्रो. शिवकुमार मिश्रजी के आशीर्वादों से मेरा कार्य प्रशस्त हुआ है । अतः उनकी भी मैं ऋणी हूं । शोध-प्रबंध में प्रयुक्त सहायक-ग्रंथों के विद्वान लेखकों का तथा हंसा मेहता लायब्रेरी के अधिकारियों का आभार मानना भी मेरा कर्तव्य है । मेरे माता-पिता श्री जीतेन्द्र रत्नसिंह चौहान तथा पुष्पलता चौहान ने भी समय-समय पर मेरे उत्साह को बढ़ाया है । मेरे पति डा. गिरीशकुमार शाह दंत-चिकित्सक हैं, उन्होंने भी मुझे मेरे कार्य के लिए सदैव प्रेरित किया है । उनके सहयोग के बिना यह कार्य संभव नहीं था । परंतु ये सब तो मेरे अपने हैं । इनका आभार मानना मानवीय संबंधों का ही अपमान होगा ।

इस समूची शोध-प्रक्रिया में मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई साहब का जो योगदान है, उसे नकारना नाशुक्राना हरकत होगी ।

उनके ऋण से उऋण होना तो संभव नहीं । डाक्टर साहब की छात्र-वत्सलता, ज्ञान-निष्ठा तथा विषय-प्रतिबद्धता के लिए कोई शब्द नहीं मिलता । वे एक प्रतिबद्ध अध्यापक हैं । यद्यपि जीवन में जितने लापरवाह, अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्र में उतने ही बापरवाह और जिम्मेदार । मेरा यह कार्य उनकी ही कृपा का फल है । उनके बहुमूल्य निर्देशनों के अभाव में यह कैसे पूर्ण होता मैं नहीं समझ सकती ।

मेरी अपनी सीमाएं हैं । कुछ त्रुटियां भी रही होंगी । हिन्दी आलोचना और शोध-अनुसंधान की दिशा में उठा यह मेरा पहला कदम है । यदि इससे भविष्यत् अनुसंधित्सुओं का पथ यत्किंचित भी प्रशस्त हो पाया तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी ।

अंत में उर्दू के ज्ञानपीठ विजेता साहित्यकार रघुपतिसहाय फिराक गोरखपुरी के इन शब्दों के साथ विरमती हूं —

"कहते हैं यारो ज़िन्दगी है चार दिन की
पर बहुत होते हैं यारो ये चार दिन भी ।"

दिनांक : 29-8-96

विनीत,

Veena J. Chauhan

(श्रीमती वीना चौहान)